कालजयी कवियों ने काल की गति को नये अंदाज में देखा है, इस अंदाज की रोशनी में भाव-भाषा-बिम्ब-शब्द- चित्र-चिह्न को रोशन करना लाजिमी है। इस दिशा में 'काव्य-सृजन के विजय-चिह्न' नामक यह पुस्तक एक अत्यन्त छोटा क्या अदना-सा प्रयास है। इस प्रयास को आलोचना पद्धति के अंतर्गत एक रूपरेखा के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा, क्योंकि युगीन चेतना को इसके जरिये उद्घाटित करने के सिलसिले में आगे बढ़ने की यह एक चेष्टा है, जहां अनुभूति, संवेदना, अनुभव, भावना को स्थान देते हुए युग-संघर्ष का नया अंदाज प्रस्तुत किया गया है।

यह पुस्तक रवीन्द्र, फ़ैज़ और नागार्जुन के साथ-साथ छायावाद की रोशनी को लेकर हिन्दी की विकास गति को नया आयाम देने की वकालत तो नहीं करती है, लेकिन उनके महत्व को रेखांकित करते हुए काव्य-सृजन के विजय-चिह्न के रूप में उन्हें स्थापित करने की बानगी प्रस्तुत करती है।

इस पुस्तक को इस रूप में प्रस्तुत करने के लिए जिन साथियों ने सहयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना एक तरह से धृष्ठता होगी। आलोचना-दृष्टि को आगे बढ़ाने में इसकी अहमियत पाठकों के हाथ में है। सारी खूबियों और खामियों के साथ यह पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। आपकी आलोचनात्मक टिप्पणी ही इस पुस्तक की जान है।

9 जनवरी, 2013
कोलकाता-75

राम आह्लाद चौधरी

Scanned with CamScanner

अनुक्रम

1. भूमिका 9-14
2. रवीन्द्र की अनुभूति 15-38
3. फ़ैज़ की संवेदना 39-54
4. नागार्जुन की प्रतिबद्धता 55-96
5. छायावाद का मानस 97-122
6. हिन्दी की संघर्ष-यात्रा 123-160

Scanned with CamScanner

4. नागार्जुन- वरुण के बेटे- पृ. 308
5. नागार्जुन- बाबा बटेसरनाथ- पृ. 430
6. नागार्जुन- बाबा बटेसरनाथ- पृ. 393
7. नागार्जुन- इमरतिया- पृ. 530
8. नागार्जुन- इमरतिया- पृ. 525
9. नागार्जुन- इमरतिया- पृ. 524
0. प्रेमचंद- नैराश्य
1. प्रेमचन्द- रूस में धर्म विरोधी आन्दोलन विविध प्रसंग
2. नागार्जुन- दुखमोचन- पृ.121
3. नागार्जुन- दुखमोचन- पृ. 124
4. नागार्जुन- गरीबदास- पृ. 561
5. नागार्जुन- गरीबदास-पृ. 560
6. नागार्जुन- कुम्भीपाक- पृ. 530
7. नागार्जुन- रतिनाथ की चाची- पृ. 250
8. नागार्जुन- नयी पौध- पृ. 239
9. नागार्जुन- उग्रतारा- पृ. 431
0. नागार्जुन- उग्रतारा- पृ. 431

छायावाद क़ा मानस

हिन्दी काव्य आन्दोलन के अंतर्गत छायावाद की खास पहचान है। विगत एक सौ साल में छायावाद ने हिन्दी- शब्द, हिन्दी- भाषा, हिन्दी- व्याकरण को ही अनुप्राणित नहीं किया है बल्कि भावभूमि की दुनिया में विचार को स्थापित करने में अहम् भूमिका निभायी है। सही अर्थों में देखा जाय तो छायावाद हिन्दी काव्य-परम्परा का वह मुहाना है, जिसने काव्य परम्परा की ऊर्जा को समाज में रखने की कोशिश की। 'कविता के जरिये क्या नहीं हो सकता है' की भावना को स्थापित करने में छायावाद की महत्ता सर्वविदित है। छायावाद का मूल्यांकन सही अर्थों में आज तक नहीं हुआ है। जब किसी की ऊर्जा का सही मूल्यांकन नहीं किया जाता है तब यही समझना चाहिए कि समाज ने उसे दबाने का प्रयास किया है। समाज में खासकर साहित्य में उठते नये भाव बोध को दबाने का प्रयास किया जाता है, एक सोची-समझी रणनीति के तहत ऐसा काम किया जाता है। शासक वर्ग के कलमचियों के जरिये यह किया जाता है।

शासकवर्ग के पिछलग्गुओं को यह भ्रम होता है कि सामाजिक- साहित्यिक मूल्यों को षड्यंत्र से दबाया जा सकता है। इससे उन्हें ताकत भी मिलती है। लेकिन जनमानस एक समय के बाद उसमें विश्वास नहीं करता है। यही कारण है कि मूल्यांकन के मानदण्ड बदलते चले जाते हैं। मूल्यांकन का जिस तरह नया मानदण्ड निर्मित होता है, ठीक उसी तरह उसका नया परिप्रेक्ष्य भी तैयार होता है। नये परिप्रेक्ष्य के साथ- साथ नये मानदण्ड का निर्माण एक प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया के जरिये आलोचना और रचना के बीच सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। छायावाद

Scanned with CamScanner

का मूल्यांकन करते वक्त नये परिप्रेक्ष्य की क्या जरूरत पड़ गयी ? क्या नये परिप्रेक्ष्य की चर्चा किये बिना किसी काव्य आन्दोलन की व्याख्या नहीं की जा सकती है ? व्याख्या करने का प्रयास किया भी जायेगा तो वह अधूरा प्रयास होगा। उस प्रयास से जमीन नहीं बनेगी, बल्कि समाज में एक भ्रम पैदा होगा। इस भ्रम से निकलने के लिए नये आलोक की जरूरत है। इस आधार के बिना किसी काव्य आन्दोलन का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है।

मूल्यांकन की समस्याएं आती हैं, तब कई तरह के खतरे भी आते हैं। यह भी कहना चाहिए कि विश्लेषण को समस्या या खतरा न मानकर सामाजिक-राजनीतिक चेतना का प्रसार समझना चाहिए। विश्लेषण युगीन चेतना की गूंज है। इस गूंज को आम पाठक नहीं जान पाते हैं। यही मूलतः समस्या है। समय जितना कठिन होगा, कविता में विचार उतना प्रबल होगा। विचार प्रधान कविता को दरकिनार करना कठिन है। इस बारे में प्रायः पांच- छह दशकों से हिन्दी आलोचना में चर्चा चल रही है। इस चर्चा से चाहे कुछ हो या न हो, इतना तो जरूर हुआ है कि समाज में संवाद शुरू हुआ है। संवाद ही परिप्रेक्ष्य का सच्चा निर्माता है, जिस ओर रचनाकार की दृष्टि जाती है।

छायावाद के मूल्यांकन को नये परिप्रेक्ष्य में देखने से पहले यह जरूर विचार करना चाहिए कि आखिर क्या कारण है कि छायावाद का जन्म हुआ ? ऐसी कौन-सी परिस्थिति पैदा हो गयी, जिसके चलते हिन्दी कविता का रुख बदल गया; बनी बनायी पटरी से हिन्दी कविता को क्यों अलग होना पड़ा? सीधे- सीधे वास्तविकता से टकराते हुए हिन्दी कविता को अपने अतीत की सारी मोह- माया से टकराना पड़ा। नये बिम्ब, नये चित्र, नव लय, नवल छंद इत्यादि का विकास हुआ। महत्वपूर्ण काव्यात्मक अभिव्यक्ति होने के बावजूद कविता के इन तमाम उपादानों पर संदेह किया गया। एक नयी भावना जब काव्यांगन में पहला कदम रख रही थी, तब बड़े- बुजुर्गों ने सोटा लेकर वहां से उसे खदेड़ने की कोशिश की। देखते- देखते उस नयी भावना ने 'विजयिनी मानवता हो जाय' का

उद्घोष किया।

छायावाद ने मानवता की जमीन को हर तरह से मजबूत किया है। एक ऐसी जमीन तैयार की, जिस पर विगत एक सौ वर्ष से कविता की फसल लहरा रही है। आखिर क्या कारण है कि मानवता की इतनी बड़ी वकालत शुरू हो गयी ? इस सवाल को समझने का एक ही रास्ता है, जब तक कवि गुरु रवीन्द्रनाथ को नहीं समझा जायेगा, तब तक छायावाद को नहीं समझा जायेगा। इसको समझने के लिए विधेयवादी दृष्टिकोण यथेष्ट नहीं है। विधेयवाद की अपनी सीमाएं हैं। इस दृष्टि से जिन साहित्य- इतिहासकारों ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा है, उस इतिहास को पढ़कर छायावाद का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता; क्योंकि इस दृष्टि में सबसे बड़ी यही खामी है कि किसी कार्य के होने के पीछे किसी एक कारण को ढूंढ़ निकाला जाता है। जैसाकि महान इतिहासकार श्रद्धेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने के लिए इसी रास्ते को अपनाया है। उन्होंने छायावाद पर टिप्पणी करते हुए लिखा है— "यह स्वच्छंद नूतन पद्धति अपना रास्ता निकाल ही रही थी कि श्री रवीन्द्रनाथ की रहस्यात्मक कविताओं की धूम हुई और कई कवि एक साथ 'रहस्यवाद' और 'प्रतीकवाद' या चित्र भाषावाद को ही एकांत ध्येय बनाकर चल पड़े। 'चित्रभाषा' या अभिव्यंजना पद्धति पर ही जब लक्ष्य टिक गया तब उसके प्रदर्शन के लिए लौकिक या अलौकिक प्रेम का क्षेत्र ही काफी समझा गया। इस बंधे हुए क्षेत्र के भीतर चलनेवाले काव्य ने छायावाद का नाम ग्रहण किया।"[1]

आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द के प्रयोग को दो रूपों में समझने की कोशिश की— पहला रहस्यवाद और दूसरा चित्रमयी भाषा के अर्थ में। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होंने लिखा है कि रहस्यवाद के अंतर्गत काव्य वस्तु का सम्बन्ध कवि उस अनन्त प्रियतम को आलंबन बनाकर चित्रमयी भाषा में प्रेम की व्यंजना करता है। यह सच है कि पहला प्रयोग भाव- विन्यास के रूप में और दूसरा प्रयोग काव्य शैली के अर्थ में होता है। इस सम्बन्ध में उन्होंने कवि गुरु रवीन्द्रनाथ के प्रभाव

Scanned with CamScanner

को स्वीकारा है, इस बारे में उन्होंने लिखा है— ''रहस्यवाद के अंतर्गत रखने पहुंचे हुए पुराने संतों या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती है जो तुरीयावस्था या समाधि दशा में नाना रूपों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को यूरोप में छाय (Phantasmata) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे- धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहां के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्रनाथ बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।''[2]

आचार्य शुक्ल ने रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को स्वीकार किया है, लेकिन रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को सीमित करने की कोशिश की। शायद यही कारण है कि आचार्य शुक्ल ने रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर रखने की चेष्टा नहीं की। इतिहास लेखन की विधेयवादी दृष्टि की यह भी एक कमजोरी है कि वह दृष्टि किसी घटना के अन्तरराष्ट्रीय पहलू पर नजर नहीं दौड़ाती है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर किसी घटनाक्रम के साथ राष्ट्रीय स्तर के घटनाक्रमों का सामंजस्य बैठाना जरूरी है। वैसे आचार्य शुक्ल ने बार- बार छायावाद की चर्चा करते हुए यूरोप-फ्रांस का नाम लिया है। यही वह बिन्दु है, जहां समझने की आवश्यकता है कि यूरोप- फ्रांस के प्रभाव सर्वविदित थे। इतनी बड़ी ताकत सारी जगह व्याप्त थी फिर भी रवीन्द्रनाथ को इतनी बड़ी महत्ता क्यों मिली ? इसलिए कि उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध की आहट सुनी। पूरी दुनिया में रवीन्द्रनाथ ने पूरी गंभीरता के साथ मानवता को बचाने के लिए सबसे पहले शंखनाद किया। इस शंखनाद का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर पड़ा, जो वेदना के रूप में छायावाद में प्रकट हुई।

इस छायावाद की विशेषता को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को स्वीकार करना पड़ा, वैसे छायावाद के आलोचकों ने यही कहने की कोशिश की है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद और उसके प्रभाव को स्वीकार नहीं किया। लेकिन आचार्य

शुक्ल पर एक तरह की हल्की टिप्पणी करने से छायावाद का सही मूल्यांकन नहीं होता है। हल्की या फूहड़ टिप्पणी करने से मूल्यांकन का मिजाज खराब हो जाता है। छायावाद के सम्बन्ध में आचार्य शुक्ल ने जो गंभीर मंतव्य किया है, उस पर ध्यान देना जरूरी है, जैसाकि उन्होंने लिखा है— ''छायावाद की रचनाएं गीतों के रूप में ही अधिकतर होती हैं। इससे उनमें अनिवति कम दिखायी पड़ती है। जहां यह अनिवति होती है वहां समूचो रचना अन्योक्ति पद्धति पर की जाती है। इस प्रकार साम्य भावना का ही प्राचुर्य हम सर्वत्र पाते हैं। यह साम्य भावना हमारे हृदय का प्रसार करनेवाली शेष सृष्टि के साथ मनुष्य के गूढ़ सम्बन्ध की धारणा बंधानेवाली, अत्यन्त अपेक्षित मनोभूमि है, इसमें संदेह नहीं।''[3]

उन्होंने छायावाद के भीतर विकास का भी दर्शन किया। इस काव्यांदोलन के विकासात्मक पहलुओं को देखकर उन्हें प्रसन्नता भी हुई, उन्होंने लिखा— ''जो कुछ हो, यह देखकर प्रसन्नता होती है कि 'छायावाद' के बंधे घेरे से निकलकर पंत ने जगत की विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छंदता के साथ विचरने का साहस दिखाया है। सामने खुले हुए रूपात्मक काव्य जगत से ही सच्ची भावना प्राप्त होती हैं, 'रूप ही उर में मधुर भाव बन जाता है' इस 'रूपसत्य' का साक्षात्कार कवि ने किया है।''[4] आचार्य शुक्ल की आलोचना दृष्टि ने हमेशा 'रूप सत्य' पर जोर दिया है। उनके लिए 'रूप सत्य' के बिना काव्य प्रयास निरर्थक है। वैसे आचार्य शुक्ल ने छायावादी काव्यों पर तरह-तरह की टिप्पणियां की, उन टिप्पणियों को लेकर आगे चलकर हिन्दी साहित्य में छायावाद पर आलोचना चल पड़ी।

हिन्दी आलोचना पर गौर किया जाय, तो स्पष्ट होगा कि आलोचना में सा फीसदी से अधिक तथ्य और सत्य आचार्य शुक्ल से उधार लिये जाते हैं या उन कथनों के खिलाफ लिखा जाता है। आलोचना की आलोचना का मूल्यांकन न होता है, वह तो एक तरह से जांच- पड़ताल ही है। हिन्दी साहित्य में इस जांच पड़ताल की पद्धति महत्वपूर्ण है। इसे आलोचना भी मान लिया जाता

Scanned with CamScanner

छायावादी काव्यों की जांच-पड़ताल भी काफी हुई है। इससे भी छायावाद को समझने में सहूलियत एक हद तक प्राप्त हुई है। छायावाद को एक विस्तृत फलक पर देखने की कोशिश करना अपेक्षित है। हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ आलोचकों ने छायावाद को विभिन्न साहित्यिक- सांस्कृतिक मुहिमों से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। वे सारे प्रयास सार्थक हैं। छायावादी काव्यांदोलन को सामने रखते हुए नवजागरण, राष्ट्रप्रेम, कलावाद, अभिव्यंजनावाद इत्यादि की व्याख्याएं अपेक्षित हैं।

यह भी सवाल उठता है कि जब हिन्दी साहित्य के अंतर्गत सन् 1918 में एक तरह से छायावाद की शुरुआत होती है तो सन् 1917 की युगांतकारी घटना को बिल्कुल छोड़ क्यों दिया जाता है, नवम्बर क्रांति के प्रभाव को सामने रखते हुए छायावादी काव्यांदोलन को देखने की कोशिश क्यों नहीं की जाती है ? क्या नवम्बर क्रांति के प्रभाव से हिन्दी साहित्य के आलोचक आज भी अनभिज्ञ हैं ? इन दोनों सवालों पर विचार करने से निश्चित रूप से छायावाद के मूल्यांकन का नया परिप्रेक्ष्य सामने आ सकता है। वैसे सोवियत संघ के विघटन के बाद आलोचना की दुनिया में कई भूचाल उठे हैं, उन तमाम भूचालों का जायजा लेते हुए नवम्बर क्रांति के प्रभावों की पुनः समीक्षा की गयी है। विश्वव्यापी स्तर पर जितनी समीक्षाएं आयी हैं, उन समीक्षाओं के अध्ययन मनन से यही साबित होता है कि सोवियत संघ का विघटन हो गया हो, पूर्वी यूरोप के देशों में समाजवाद का विघटन हो गया हो, लेकिन जिस सिद्धांत ने नवम्बर क्रांति को अंजाम दिया, वह सिद्धांत जिस तरह बेदाग है, ठीक उसी तरह क्रांति के प्रभाव को भी कोई बेकार साबित नहीं कर सकता है।

उल्लेखनीय है कि नवम्बर क्रांति अमर है। इसकी अजेय शक्ति ने पूरी दुनिया को रोशनी दी। इस क्रांति के बाद दुनिया के विभिन्न देशों में मजदूरों के नेतृत्व में आजादी के लिए आन्दोलन शुरू हुआ। साथ ही, हर देश में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन आरंभ हुआ। मार्क्स- एंगेल्स ने कम्युनिस्ट घोषणा पत्र के जरिये जिस

सिद्धांत की घोषणा की, उस सिद्धांत को नवम्बर क्रांति के जरिये वास्तविक जामा पहनाया गया। लेनिन के नेतृत्व में यह क्रांति सफल हुई।

विगत 93 साल में विभिन्न तरह के घटनाक्रम राष्ट्रीय- अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हुए। उन घटनाक्रमों ने लोगों को नये अनुभव दिये। उन अनुभवों के अनुसार दुनिया के जागरूक लोगों ने अपनी कोशिश आरंभ की। इतिहास चाहे जितने कठिन रास्ते से गुजरे, पर अनुभव और कोशिश का अपना महत्व होता है। इस महत्व पर रोशनी डालते हुए लेनिन ने नवम्बर क्रांति की दूसरी वर्षगांठ पर वक्तव्य पेश करते हुए कहा था— ''हमारे निर्माण कार्य के प्रति सचेत दृष्टिकोण रखनेवाले जनसाधारण जो गलतियां करते हैं, उनसे हम घबराते नहीं, क्योंकि हमारा एक ही अवलंब हो सकता है— हमारा अनुभव और हमारी कोशिश।''

नवम्बर में क्रांतिकारी सोवियत संघ का गठन हुआ। इसके जरिये पूरे विश्व में समाजवाद के निर्माण की प्रक्रिया जारी हुई। इस क्रांति ने दिखला दिया कि समाजवाद की स्थापना क्यों जरूरी है ? पूंजीवाद का खात्मा मानव सभ्यता के विकास के लिए आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए विश्व पैमाने पर यथार्थवादी अध्ययन- मनन- चिंतन का विकास हुआ। इस विकास ने दुनिया को जो नया आलोक दिया, उसके चलते इंकलाब को ठोस आधार मिला। इस आधार पर खासकर नौजवानों के हौसले बुलंद हुए। उर्दू के महान शायर मजाज ने 'नौजवान से' शीर्षक नज्म में लिखा— ''तू इनकलाब की आमद का इंतजार न कर/ जो हो सके तो अभी इनकलाब पैदा कर।''

मजाज की यह प्रसिद्ध पंक्ति है। उन्होंने नौजवानों से अपील की थी कि यदि रहने लायक दुनिया बनानी है तो इंकलाब पैदा करना ही होगा। उन्होंने यह महसूस किया था कि पूंजीवादी व्यवस्था आम जनता को असभ्य बनाने की राह पर धकेलेगी। उन्होंने जो सोचा था, वही हुआ भी। मजाज की सौवीं सालगिरह चल रही है। उनकी जन्मशती के मौके पर यह कहना जरूरी है कि उन्होंने भी भारत की धरती पर इंकलाब के लिए अपनी कलम उठायी थी। इस क्रांतिकारी कवि ने

Scanned with CamScanner

क्रांति के लिए जमीन तैयार करने की कोशिश की तथा मेहनतकशों के हक के लिए संघर्ष को आगे बढ़ाया। मजाज की तरह लाखों- लाख शायर- कवि हैं, जिन्होंने नवम्बर क्रांति की सफलता की प्रशंसा करते हुए परिस्थितियों से सीखने और उन्हें बदलने की ओर न केवल संकेत किया बल्कि उस रास्ते को और प्रसारित करने का प्रयास किया। नवम्बर क्रांति के अवसर पर उन शायर- कवियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना लाजिमी है। इस सिलसिले में बाबा नागार्जुन को याद करना जरूरी है, क्योंकि उनकी जन्मशती चल रही है और उन्होंने तो स्पष्ट लिखा कि लेनिन के बिना इस संसार के दुःख- दर्द को नहीं बदला जा सकता है।

बाबा नागार्जुन ने 'याद आता है तुम्हारा नाम' शीर्षक कविता में स्पष्ट लिखा है— "जाने कहां- कहां/ विकल हैं कोटि- कोटि प्राण/ कसमसा रहे हैं हाथ-पैर लहूलुहान!/ कब होगी खत्म गुलामी की कालरात्रि ?/ कब होगा अंत—/ विश्व-भर में फैले खंड- खंड नरकों का ?/ ऐसे में, हमें, तो बस याद आता है तुम्हारा नाम/" बाबा नागार्जुन को गुलामी की कालरात्रि को खत्म करने के लिए क्या कारण है कि लेनिन का ही नाम याद आता है ? इसलिए कि लेनिन ने नवम्बर क्रांति को सफल किया, जो निश्चित रूप से इस दुनिया में एक युगांतकारी घटना है। इसके जरिये पूरे विश्व में कम्युनिस्ट आन्दोलन को बढ़ने में मदद मिली। खासकर मजदूरों की ताकत पहली बार समाज में स्थापित हुई। तभी तो महान जनकवि केदारनाथ अग्रवाल ने मेहनतकशों की अमरता पर रोशनी इस प्रकार डाली है— "जो जीवन की आग जलाकर आग बना है/ फौलादी पंजे फैलाये नाग बना है/ जिसने शोषण को तोड़ा, शासन मोड़ा है/ जो युग के रथ का घोड़ा है,/ वह जन मारे नहीं मरेगा,/ नहीं मरेगा!!/" यह सच है कि मेहनतकशों को कोई मार नहीं सकता है। खासकर पूंजीवादी व्यवस्था भी इस मेहनत के बिना एक इंच आगे नहीं बढ़ सकती है। इस व्यवस्था ने पूरी दुनिया को बैल बनाकर रख दिया है।

महान जन कवि शमशेर बहादुर सिंह ने अपनी प्रसिद्ध कविता 'बैल' में एक

बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है— "मेरा मालिक भी शायद एक अन्य दो टांगों पर खड़ा/ और मुंह वाला कपड़ा पहननेवाला/ बैल है : एक गंदा- सा नाटा- सा बैल/ कमजोर मगर बहुत चालाक और गीत गुनगुनाने वाला/ बैल... जो गीत मुझे अच्छे लगते हैं... मगर/ कभी- कभी मैं अपने इसी भ्रम में/ कहां खो जाता हूं, कुछ पता नहीं चलता/ यह सारी दुनिया मुझे बैल मालूम होता है।/ बां!!!!!!! बां!!!!! बां!!!!!! नवम्बर क्रांति ने इसी दुनिया को बदलने का काम किया। बदलने का सिलसिला चल रहा था कि अचानक सोवियत संघ टूट गया। समाजवाद का पराभव हो गया लेकिन इस पराभव से यह साबित नहीं हुआ कि नवम्बर क्रांति का महत्व समाप्त हो गया। एक विचारधारा ने जो सफलताएं अर्जित की, उन सफलताओं को म्लान नहीं किया जा सकता है। निश्चित तौर पर गलतियां हुईं, उन गलतियों से शिक्षा लेकर आगे बढ़ने की कोशिश की गयी। सोवियत संघ के टूटने के बाद एक ध्रुवीय विश्व बना। इस विश्व ने खासकर मेहनतकशों को बर्बाद कर दिया। आज पूरी दुनिया में पूंजीवादी संकट पर चर्चाएं हो रही हैं। जिन देशों में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रयोग नहीं हो पाता है, जहां कम्युनिस्ट संगठन अत्यन्त कमजोर है, उन देशों में भी आज शासकवर्ग की नीतियों के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन शुरू हो गया है। पूंजी का आक्रामक रूप देखने को मिल रहा है। दुनिया की साम्राज्यवादी शक्तियों का असली रूप देखने को मिल रहा है। साम्राज्यवादी शक्तियां अमेरिकी प्रशासन की अगुवाई में उन तमाम देशों को बर्बाद करने में लग चुकी हैं, जहां तेल की पर्याप्त सम्पदा है। आज पूरे विश्व में विद्वानगण इस बात को मान रहे हैं कि यदि अमेरिकी प्रशासन तेल के लिए इराक- अफगानिस्तान में इतना खून नहीं बहाता, तो दुनिया के सामने न महंगाई की इतनी भयावह समस्या उत्पन्न होती और न इतने बड़े पैमाने पर मंदी का भयानक प्रहार होता, क्योंकि उन तमाम देशों में युद्ध के चलते तेल निकालने में गतिरोध पैदा हुआ। देश के जाने- माने आर्थिक जगत के विश्लेषकों तथा अर्थशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि सन् 1930 की मंदी से भी इस बार की मंदी तीखी है।

Scanned with CamScanner

दुनिया को मंदी की मार से बचाने के लिए साम्राज्यवादी नरपिशाचों के पास युद्ध के अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। अमरीकी नरपिशाच सिर्फ रक्तपात करना चाहता है और अपने इस मिशन को हासिल करने के उद्देश्य से पूरी दुनिया में उसने हजारों सैन्य अड्डे बना रखे हैं। दुनिया के प्रायः हर देश में इस सैन्य बल के जरिये उस देश के भीतरी और बाहरी मामलों में वह हस्तक्षेप करता है। दूसरों के आर्थिक दोहन पर उसका बाजार गर्म है। इस बाजार को गर्म रखने के लिए वह लाखों-करोड़ों रुपये पानी की तरह बहा रहा है। चारों मोर्चों पर विफल होने के बावजूद अभी तक उसके अंत होने का संकेत नहीं मिला है। वैसे उसकी हर नीति के विरुद्ध आन्दोलन संगठित होने लगे हैं। यह आन्दोलन धीरे- धीरे प्रसारित होने लगा है। विगत दो दशकों में नव- उदारीकरण के खिलाफ इतना बड़ा आन्दोलन नहीं हुआ। रन्तु नरपिशाचों के पिछलग्गुओं ने इस आन्दोलन को महज आक्रोश के रूप में । केवल देखने का प्रयास किया है बल्कि जन- असंतोष की संज्ञा दी है और उधर रपिशाच ने इस आन्दोलन को जन- असंतुष्टि समझकर उस पर गंगा जल छड़कने का प्रयास किया है। इस आन्दोलन को कुचलने में उसे सफलता मिल ायेगी। लेकिन सफलता मिलना इतना आसान नहीं है। जब जनता जाग जाती है, गुलामी की कालरात्रि को समाप्त होना पड़ता है।

उल्लेखनीय है कि विगत दो दशकों में नव-उदारीकरण नीति ने देश और दुनिया हर क्षेत्र में बर्बाद करने का काम किया है। इस बर्बादी के चलते आज पूरी या में भुखमरी- कुपोषण- बेरोजगारी की समस्या बढ़ती जा रही है। किसी के शासक और शोषक वर्ग की तरफ से इन लाइलाज बीमारियों को समाप्त ने के लिए सही उपचार नहीं दिखता है बल्कि जनता के प्रतिवादी स्वर को ने के लिए सैन्य बल को भेज दिया जाता है। चंद अमीरों को और अमीर बनाने प्रक्रिया तेज हो रही है। जैसे- जैसे इस प्रक्रिया को तेज किया जा रहा है, - वैसे उसके विरुद्ध मेहनतकश संगठित होते जा रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियां न्त भयावह और जटिल हो गयी हैं। इस जटिलता से बाहर निकलने का

फिलहाल रास्ता नहीं दिखता है; लेकिन इन परिस्थितियों को बदलने में जनता कारगर साबित होगी, इस भरोसे की ओर इंगित करते हुए जनकवि विजेन्द्र ने 'अंधेरे से उजाले में' शीर्षक कविता में बिल्कुल सही लिखा है— ''घबराओ मत/ दृढ़ होकर प्रकाश की तरफ/ बढ़ चलो।/ हम भारी मन से/ प्रभात का स्वागत करें/ इस उम्मीद में/ कि आज धूप खिलेगी/'' और जब धूप खिलेगी तब अंधेरे को दूर भागना ही है, क्योंकि अंधेरे में न इतनी ताकत है और न इतना धैर्य कि वह धूप का मुकाबला करे। मैदान छोड़कर भागने के लिए अंधेरा अभिशप्त है, बशर्ते कि धूप खिले। लेकिन इसका मतलब कदापि यह नहीं है कि जब तक धूप नहीं खिलती है, तब तक हम हाथ पर हाथ डाले बैठे रहें।

परिस्थितियों का सही विश्लेषण और उस विश्लेषण के अनुरूप सटीक हस्तक्षेप करना वक्त का तकाजा है। इसकी पूर्ति के लिए कठोर से कठोर रास्ते पर चलना ही फौरी कार्य है। इस कार्य को पूरा करने से अनुभव प्राप्त होते हैं और अनुभव प्राप्त करने की कोशिश करनी पड़ती है। अनुभव और प्रयास के जरिये ही मानव सभ्यता के दुश्मन साम्राज्यवादियों की सच्चाइयों को पहचाना जा सकता है। आज हर जागरूक व्यक्ति जानता है कि साम्राज्यवाद घृणा द्वारा प्रेरित और संचालित है। इसके इस चरित्र की व्याख्या करते हुए लेनिन ने समाजवादी क्रांति की अवश्यंभावी विजय के संबंध में उद्घोष किया— ''हम जानते हैं कि साम्राज्यवादी नरपिशाच अभी भी हमसे अधिक शक्तिशाली हैं और वे अभी भी अपनी हिंसा तथा अपने अत्याचारों द्वारा देश को घोर कष्ट पहुंचा सकते हैं... हम कहते हैं : चाहे जो भी हो, साम्राज्यवादी चाहे जितनी आफतें ढायें, उनकी जान इससे बचनेवाली नहीं है। साम्राज्यवाद ढहेगा और सब कुछ के बावजूद अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी क्रांति विजयी होगी!''

कठिन और जटिल रास्ते पर चलते- चलते कुछ गलतियां होना स्वाभाविक है, पर उन गलतियों से शिक्षा न लेना अस्वाभाविक है। सामयिक विफलताओं से शिक्षा लेकर आगे बढ़ना तथा समाजवादी क्रांति के लिए हर हाल में आगे बढ़ने

Scanned with CamScanner

का संकल्प लेना वर्तमान समय में न केवल अनिवार्य है बल्कि राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों की हकीकत है। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का जिक्र करना अप्रासंगिक नहीं होगा, जिन्होंने मूल्यांकन और नये परिप्रेक्ष्य के बीच एक तादात्म सम्बन्ध स्थापित करते हुए चारित्रिक संकट की बात उठायी।

मुक्तिबोध ने 'एक लंबी कविता का अंत' शीर्षक से जनवरी 1963 में एक आलेख प्रस्तुत किया था। यह आलेख नव लेखन में प्रकाशित हुआ था। उन्होंने इस आलेख में चारित्रिक संकट उत्पन्न होने के पीछे कई कारणों पर गंभीरता से विचार प्रस्तुत किया। इसके उत्पन्न होने के संबंध में उन्होंने स्पष्ट लिखा है- "भारत के उच्चतर वर्ग, पश्चिम के साम्राज्यवादी देशों की अद्यतन राजनीतिक और सांस्कृतिक मनोवृत्तियों को आत्मसात करते हुए अपने सांस्कृतिक प्रभाव को विस्तृत करना चाहते हैं। छोटे से मझोले मध्य-वर्ग के महत्वाकांक्षी लेखक, पद और प्रतिष्ठा के लोभ में उन्हीं के दरवाजे जाते हैं। उन्हीं से सामंजस्य स्थापित करते हैं और जाने या अनजाने, साहित्य में उन्हीं उच्चतर वर्गों की अद्यतन राजनीतिक-सांस्कृतिक मनोवृत्तियों के, उन्हीं के प्रभावों और विचारों के, उन्हीं की दृष्टियों और भावों के संवाहक बन जाते हैं। यह एक वास्तविक जीवन तथ्य है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता।" मुक्तिबोध की इस दृष्टि पर विचार करने से स्पष्ट होगा कि भारत में इस वर्ग का पतन बड़े पैमाने पर हुआ है। पतन की प्रक्रिया का अंत अभी तक नहीं हुआ। कहां जाकर कब यह प्रक्रिया बंद होगी कहना मुश्किल है।

इतिहास का यह वर्तमान समय एक अत्यंत भयानक काल है। इस काल को समझना कठिन है। इतना कठिन है कि शायद कोई समझना नहीं चाहता या समझकर बोलना नहीं चाहता। ऐसा क्यों? जब-जब इस सवाल पर जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत लोग सोचने लगते हैं, तो उनके संबंध में यही कहा जाता है कि समय के विपरीत सोचनेवाले पागल हैं। धरती में गड़े हुए सोने की खोज में मिट्टी खोद रहा है। क्या धरती से सोना निकलेगा? यदि मान लिया जाय कि

सोना निकलता भी है, तो वह उस सोने का क्या करेगा? इसी आलेख में मुक्तिबोध ने लिखा है- "कुछ पागल लोग, कीमियागर (ऐलकेमिस्ट), लोहे को सोना बनाने की फिक्र में लगातार काम करते हुए नष्ट हो गये। कुछ दूसरे ढंग के पागल, जमीन में गड़े खजाने को खोजने और कभी भी न पा सकने में इतने मशगूल रहे कि उनकी फैमिली ने, समाज ने, जमाने ने उन्हें बेवकूफ करार दिया।" चारित्रिक संकट के विरुद्ध आवाज उठाने के नाम पर गोलबंदी से काम नहीं चल सकता। इसके लिए पूरी समझदारी की जरूरत है।

इस जरूरत को समझे बिना आगे बढ़ने का सीधा अर्थ है- आग में कूदना? कौन आग में कूदता है और भला किसके पास आग में कूदने का वक्त है। हर कोई वक्त के बदलने के इंतजार में रमा हुआ है? कौन पकड़ेगा-अश्वमेध के घोड़े को? वही पकड़ सकता है, जो पूरे समाज को, साहित्य को, राजनीति को इस चारित्रिक संकट से बाहर निकालने की कोशिश करता हो। साथ ही वह चारित्रिक संकट प्रकट होने की प्रक्रिया से अवगत हो। जैसा कि मुक्तिबोध ने लिखा है- "...यह संकट, लाभ-लोभ के फलस्वरूप और उस लाभ-लोभ से प्रेरित 'समझदारी' से पैदा होता है। जब तक समाज पर धन का शासन रहेगा, तब तक यह चारित्रिक संकट, अधिक-से-अधिक असंतोष और अव्यवस्था उत्पन्न करने के अतिरिक्त मानव-मूल्यों की हानि के साथ ही, लाभ-लोभ से प्रेरित 'समझदारी' को प्रधानता देता जायेगा, आदमी ज्यादा से ज्यादा टुच्चा और ओछा होता चला जायेगा। फलतः न केवल सामान्य जनता पर उनके दासों-उपदासों द्वारा शोषण का बोझ बढ़ता जायेगा, वरन यह कि उन स्वामियों और दासों-उपदासों के चारित्रिक अधःपतन से उत्पन्न परिस्थिति भी सामान्य जनता के लिए अधिकाधिक भयावह और दुर्वह होती जायेगी।" इसी भयावह और दुर्वह परिस्थिति से समाज को बचाने की आवश्यकता है। इसके लिए व्यापक संजीवनी कारी आंदोलन की ओर बढ़ने के अलावा मानव सभ्यता के पास कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

Scanned with CamScanner

लाभ-लोभ की अर्थवाहिनी सत्ता से सामंजस्य-स्थापन करने की मजबूरी ही प्राय:-प्राय: सारी समस्याओं की जड़ है। इस सत्ता को पलटने से मानव को मुक्ति मिल जायेगी, कोई नहीं कह सकता, क्योंकि इस सत्ता की गतिमयता भी काफी तेज होती है। अपने रूप-रंग को वह समय-समय पर इस तरह से बदलती है, जिसे देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इसने ही कल सामान्य जन को बर्बाद किया है। शोषण करते हुए भी इसकी साख ज्यों की त्यों बनी रहती है। एक हद तक उसकी लोकप्रियता भी धीरे-धीरे उभार की ओर बढ़ती है। यदि कोई उसके असली चेहरे को खोलने की कोशिश करे तो वह स्वयं परास्त हो जाता है। बड़े धैर्य की जरूरत है। इस भागमभाग दुनिया में किसके पास उतना वक्त है कि खड़ा रहे और उसके विनाश को लीला देखे। उसके विनाश होने में कितना समय लगेगा, कोई कह भी नहीं सकता। उसका विश्लेषण-विवेचन चाहे जितना किया जाय, कहना तो यही पड़ेगा कि उसका किला अभी सुरक्षित है! चार सौ-पांच सौ साल के इतिहास में पूंजीवाद का सुरक्षा-भाव मजबूत हुआ- यह कहना न उचित है और न सटीक। समाज ने उसकी असलियत को समझा है। उसे परखा है। एक निष्कर्ष पर आया है।

मुक्तिबोध ने भी इसके संबंध में अपना विचार व्यक्त किया है, जो स्पष्ट और आज के संदर्भ में संजीवनीकारी आंदोलन को व्यापकता देने में निश्चित तौर पर प्रेरणादायक है। मुक्तिबोध के अनुसार- " पूंजीवादी अपने मुनाफे के लिए किसी की परवाह नहीं करता- नीति,संस्कार,संस्कृति,आदर्श इत्यादि सब हट जाते हैं। केवल मुनाफा उसका लक्ष्य है। यह मुनाफा बहुसंख्यक जनता के शोषण से ही प्राप्त हो सकता है, भले ही वह शोषण कानूनी शोषण हो या गैर-कानूनी बेईमानी से प्राप्त धन। इस धन से फिर कारोबार बढ़ाया जाता है, व्यवसाय बढ़ाये जाते हैं, उद्योग स्थापित किये जाते हैं (कम-से-कम पूंजीवादी यही सोचता है)। जनता के सुख-शांति विनाश से प्राप्त धन फिर व्यावसायिक-औद्योगिक निर्माण में लगाया जाता है।"

सतही तौर पर पूंजीवाद विश्व को हरा-भरा रखने का दंभ भरता है। जीवन को विकसित-आनंदित करने का खेल करता है। वास्तविकता यही होती है कि पूंजीवाद प्रति-पग पर जबर्दस्त विनाश करता है। वह जनता की छाती पर शोषण का पहाड़ खड़ा करता है। एक भयभीत वातावरण पैदा करता है। इस वातावरण को इस रूप में पेश किया जाता है कि इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है। साथ ही पूरे जगत को अपने अधीन करने का अंतिम दांव चलाता हैं, जिसके चलते दीनता और बढ़ती है।

छायावादी कवि प्रसाद ने महाकाव्य 'कामायनी' में लिखा है-"भय की उपासना में विलीन/ प्राणी कटुता को बांट रहा। जगती को करता अधिक दीन/" शासक बनकर भय फैलाना उसकी दिनचर्या बन जाता है। दमन,शोषण, भ्रांति उसके हथकंडे बन जाते। कौन उसके विरुद्ध लड़े? लेकिन दलित-कुचलित व्यक्तियों की स्थिति अत्यंत खराब हो जाती हैं। जैसाकि प्रसाद ने लिखा है- "यहां शासनादेश घोषणा विजयों की हुंकार सुनाती,/ यहां भूख से विकल दलित को पदतल में फिर-फिर गिरवाती/" पूंजीवाद निहायत व्यक्तिवादी चरित्रों को प्रश्रय देता है। उसी के अनुरूप वह काम करता है। खुद का विकास उसका मूल मंत्र बन जाता है। लेकिन कोई खुद को विकसित करने से विकसित नहीं होगा। 'कामायनी' महाकाव्य में प्रसाद ने इस ओर ध्यान आकर्षित करते हुए उलझन को सुलझाते हुए लिखा है- "अपने में सब कुछ भर कैसे/ व्यक्ति विकास करेगा?/ यह एकांत स्वार्थ भीषण है।/ अपना नाश करेगा/...सुख को सीमित कर अपने में/ केवल दु:ख छोड़ोगे/ इतने प्राणियों की पीड़ा लख/ अपना मुंह मोड़ोगे।"

प्रसाद ने बिल्कुल सही उल्लेख किया कि कोई व्यक्ति अपने ज्ञान के आधार पर ही अपने को विकसित नहीं कर पाता है। जब तक इस ज्ञान का सरोकार जीवन से नहीं होता, तब तक वह अर्थहीन बना रहता है। इस बारे में मुक्तिबोध ने भी 'कुछ और डायरी' में लिखा है- "इसीलिए हमारा ज्ञान, जीवन से अछूता रखने

Scanned with CamScanner

के कारण, रिश्तियों के समान नीरस, और अर्थहीन हो जाता है। ज्ञान क्रम में रस नहीं आता। वही तो आवाजें हैं।'' जब तक इस तरह के रस बनने की समस्या रहेगी, तब तक एक के बाद एक संकट पैदा होता रहेगा और चारित्रिक संकट ज्यों का त्यों बरकरार रहेगा। इसका कोई दूसरा उपाय हमारे सामने नहीं है, ऐसी बात नहीं है। हमें लगातार उस संकट से बाहर निकलने के लिए संघर्ष जारी रखना होगा।

यह संघर्ष समाज-साहित्य-संस्कृति हर क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से तब तक जारी नहीं हो सकता है, जब तक कि एक जनशोषण विरोधी समझदारी का विकास नहीं होता है। इसमें चेतना जगाने की शक्ति संयोजित करने के सारे सरंजामों को व्यवस्थित करने की कुशलता अनिवार्य है। जन जागरूकता को नये सिरे से बड़े पैमाने पर स्थापित करते हुए यह सिद्ध करना ही होगा कि शोषित जनता के व्यापक हिस्से में जागरूकता की ज्योति जल रही है। यदि किसी कोने से यह मालूम पड़े कि अमुक कारण से इस ज्योति शिखा की किरणें लुप्त होने के कगार पर पहुँचने वाली हैं, तो अतिशीघ्र काल की धारा को बदलने के लिए होड़ शुरू करनी पड़ेगी। तूफान में दुबली नाव को पूरी तरह सुरक्षित करने का जोखिम उठाना पड़ेगा। सिर्फ जोखिम उठाने से इस ज्योति शिखा को नहीं बचाया जा सकता है। इसके लिए पूरी गारंटी देने के साथ-साथ सफलता हासिल करना जरूरी है। यहीं जनतंत्र की महत्ता उजागर होती है।

जनतंत्र की दुहाई देने वालों को अच्छी तरह से अवगत होना होगा कि विकास के जरिये शोषण की प्रक्रिया को एक हद तक नियंत्रित करना संभव है। निश्चित तौर पर विकास वर्ग संघर्ष का एक हिस्सा हो सकता है। लेकिन सिर्फ इसी के जरिये वर्ग संघर्ष को तेज नहीं किया जा सकता है। अनुभव के जरिये यह साबित हो रहा है कि विकास का नारा देते हुए पूंजीवाद के 'भक्त' अपनी ध्वजा को ऊंचा रखने में आगे बढ़ते जाते हैं। उनका ध्वज ऊंचा रखने का सीधा अर्थ है- शोषण तेज होना। और तेज होते शोषण से सामान्य जन को कुचला जाता है। यदि कोई इस स्थिति में परिवर्तन की बात करता है, तो एक गलत सोच और गलत कार्रवाई

का ही परिचायक होता है। पर इस वास्तविकता को बड़े पैमाने पर स्थिर करने में न केवल वक्त लगता है, बल्कि तात्कालिक नुकसान होता है। संघर्ष चाहे जितना आगे बढ़ जाय, पर ऐसा नुकसान होता है कि सिर भी उठाना मुश्किल है। मनोबल बढ़ाने की जरूरत हो जाती है। इस मनोबल से शत्रुओं के विरुद्ध लड़ना कितना संभव है। मनोबल-आत्मबल से दुश्मन को परास्त करना एक भाववादी सोच है। इस आंधी-तूफान में तपबल किसी काम के लिए उपयोगी साबित नहीं होता है। तर्क भी वैज्ञानिक अवलंबन नहीं कर पाता।

मुक्तिबोध ने इसके कारण की तलाश करते हुए कहा है- ''इसका प्रधान कारण यह है कि अपनी भावुकता, भावावेग, सहानुभूति, क्षमता, मर्मस्पर्शी मनोवैज्ञानिकता के सारे वैभव के बावजूद, यह आत्मबद्ध व्यक्तिवाद, अपनी आत्मबद्धता के फलस्वरूप ज्ञान और भाव तथा कार्य के बीच दीवारें खड़ी कर देता है।'' सवाल यह उठता है कि ऐसा क्यों होता है? इसलिए होता है कि वर्ग-विभाजन तथा वास्तविक वर्ग संघर्ष की वास्तविकता, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के विश्लेषण-विवेचन से आम जन को काटने की प्रक्रिया को काफी तेज कर दिया जाता है। इस काम में मीडिया को लगाया जाता है। कारपोरेट मीडिया बड़ी जिम्मेदारी के साथ इस काम को अंजाम देता है। जिसके संदर्भ में आलोचक-विश्लेषक कहते हैं कि प्रचार काफी तेज हो गया है।

ज्ञान-क्रिया-इच्छा पर तथा उनके सामंजस्य पर पर्दा डालने का प्रयास किया जाता है। उसे रहस्यमयी बनाने का ढोंग रचा जाता है। पर यह समस्या सिर्फ बुद्धिजीवियों-कवियों-दार्शनिकों के सामने ही नहीं है। यह सवाल तो मनुष्य मात्र के सामने खड़ा है। क्या इस सवाल को परिवर्तन से सुलझाया जा सकता है? तथाकथित परिवर्तन किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। इस परिवर्तन में किसी को बचाने की ताकत नहीं है। 'कामायनी' में श्रद्धा ने कहा है- 'कल ही यदि परिवर्तन होगा/ तो फिर कौन बचेगा/ क्या जाने कोई साथी बन/ नूतन यज्ञ रचेगा/ और किसी की फिर बलि होगी/ किसी देव के नाते/ कितना धोखा! उससे

Scanned with CamScanner

तो हम/ अपना ही सुख पाते/ ये प्राणी जो बचे हुए हैं। इस अचला जगती के/ उनके कुछ अधिकार नहीं/ क्या वे सब ही हैं फीके !/' यह सवाल आज साहित्य-शास्त्र के समक्ष मौजूद है, क्योंकि अब तो इतिहास के अंत होने की बात का भी सच सामने आ गया है।

इतिहास इसका गवाह है। लेकिन आज जब इतिहास का ही अंत करने की बात की जाती है, तब भला क्या कहा जाय? इस बारे में भी स्पष्ट है कि इतिहास के अंत होने की घोषणा करने का भी इतिहास है और उसकी जांच- पड़ताल करने पर यथार्थपरक वास्तविकता से मुखातिब हुआ जा सकता है। हिन्दी आलोचना में छायावाद को यथार्थ की जमीन पर लाने की कोशिश की गयी है। आचार्य शुक्ल के बाद हिन्दी आलोचकों में प्रो. नामवर सिंह की आलोचना दृष्टि की चर्चाएं खासकर छायावाद के मूल्यांकन करने के संदर्भ में बार- बार होती रही हैं। वैसे माना यह जाता है कि आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी ने छायावाद को स्थापित किया है। यह मनोभाव तो ऐसा ही है कि आलोचक के बिना किसी काव्यांदोलन की चर्चा करना ही बेकार है। यदि कोई आलोचक किसी काव्यांदोलन को अपनी दृष्टि और बुद्धि से स्थापित भी करता है तो इसमें क्या खराबी है। सवाल तो यह है कि उसके मकसद को समझना जरूरी है तथा अपने मकसद को प्रस्तुत करते हुए उस आलोचक ने जो कुछ लिखा है, उसका प्रभाव आनेवाली पीढ़ी पर किस तरह पड़ा है, यह देखने की आवश्यकता है। इसके बिना काव्यांदोलन का मूल्यांकन निरर्थक है। सिर्फ शब्द से खेलने से न कविता बनती है और न आलोचना की जाती है।

आलोचना के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ- साथ वास्तविक आधार अत्यावश्यक है। प्रो. नामवर सिंह ने भी छायावाद पर विस्तार से चर्चा करते हुए कहा है— ''छायावाद का स्थायित्व उसके व्यक्तिवाद में नहीं, उसकी आत्मीयता में है, काल्पनिक उड़ान में नहीं, आत्म प्रसार में है, समाज भीरुता में नहीं, प्रकृति प्रेम में, प्रकृति पलायन में नहीं, नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा में है, आवेगपूर्ण भावोच्छवास में नहीं, संवदेनशीलता में है, सौन्दर्य की कल्पना में नहीं, सौन्दर्य की

भावना में है, स्वप्न में नहीं, स्वप्न की वास्तविक आकांक्षा में है, अज्ञात की जिज्ञासा में नहीं, ज्ञान के प्रसार में है, आदर्श में नहीं, यथार्थ में है, कल्पना में नहीं, वास्तविकता में है, दृष्टिकोण में नहीं, दृष्टि में है, उक्ति- वैचित्र्य में नहीं है, अभिव्यंजना के प्रसार में है।'[5] प्रो. नामवर सिंह ने छायावाद की समीक्षा करते हुए बार- बार यही स्थापित करने की चेष्टा की है कि छायावाद एक स्थायी काव्यांदोलन है, जिसने काव्यगत स्वाधीनता को तत्कालीन स्वाधीनता संग्राम से जोड़ने का काम किया।

सवाल यही है कि क्या कारण है कि पूरी दुनिया में सन् 1917 की महान नवम्बर क्रांति के बाद स्वाधीनता संग्राम तेज हो गया। इसके तेज होने के हजार कारण हो सकते हैं। लेकिन यह भी सच है कि नवम्बर क्रांति ने पूरी दुनिया में विभिन्न देशों को उपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध आन्दोलन करने की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा को आधार मानकर छायावादी काव्यों की आलोचना उस रूप में नहीं हो पायी। इसका भी एक कारण है कि आलोचकों ने नवम्बर क्रांति को विशुद्ध राजनीतिक घटनाक्रम मान लिया, जबकि नवम्बर क्रांति को सम्पन्न करने में रचनाकारों- आलोचकों की भी बड़ी भूमिका रही है। इस भूमिका को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक चर्चाओं को विकसित नहीं करने से वास्तविकता की समझ समाज में नहीं हो पाती है। समय की वास्तविकता को रेखांकित करने के लिए रचनाकार अपनी कलम लेकर संघर्ष के मैदान में उतरते हैं। पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होने की बात सोचते हैं तथा पूरे समाज को मुक्त करने का स्वप्न देखते हैं। इसी स्वप्न को हकीकत में बदलने से एक मुकम्मल रचना सामने आती है। इस दृष्टि से अभी तक छायावाद पर चर्चा नहीं हो पायी है, जिसकी जरूरत है। यदि कोई इस जरूरत पर ध्यान नहीं देता है तो उसमें कोई भारी नुकसान नहीं होता है क्योंकि मूल्यांकन का मामला विशुद्ध घाटे का सौदा है।

साहित्य में उठ रहे विभिन्न वाद-विवादों के आईने में भी छायावाद के मूल्यांकन को देखा जा सकता है। यह भी उसके मूल्यांकन को एक नया आयाम

Scanned with CamScanner

दे सकता है। विमर्श की दुनिया में छायावाद को घसीटकर लाया जा सकता है। विचार की धरती से काटकर छायावाद की चर्चा हो सकती है। इस तरह की चर्चाएं भी लोगों ने की हैं। यहां यह भी देखना चाहिए कि क्या कविता की जमीन पर छायावाद की चर्चा सिर्फ अभिव्यंजना के प्रसार तक ही सीमित है या उससे आगे भी; इसकी पड़ताल जरूरी है।

इस संदर्भ में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की आलोचना दृष्टि पर विचार करना काव्य आलोचना का तकाजा है। इसे ध्यान में रखने पर स्पष्ट होगा कि आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावादी कविताओं का मार्मिक विश्लेषण करते हुए कवि की अंतर्वृत्ति, मौलिकता, सृजन की लघुता- विशालता, दार्शनिक- सामाजिक- राजनीतिक विचारों, समय, समाज, रीति, शैली इत्यादि के अध्ययन पर जोर दिया। युगीन चेतना को ध्यान में रखकर भी आलोचना करना अपेक्षित है क्योंकि आलोचना में मुख्य रूप से युगीन चेतना की गूंज होती है। जब तक इस गूंज की ओर दृष्टि नहीं जाती है, तब तक युग की वास्तविकता को समझना कठिन है। कवि अपनी रचनाओं के जरिये इस सच को एक बड़े पैमाने पर उद्घाटित करने का प्रयास करता है। छायावाद पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की बेबाक टिप्पणी का विश्लेषण करते हुए डॉ. पुष्पिता अवस्थी ने लिखा है— ''वाजपेयीजी आधुनिक पद्धति में विश्वास करते हैं। यह वैज्ञानिक दृष्टि उन्हें पश्चिम से प्राप्त हुई है अतः वे समीक्षा के क्षेत्र में समाज- शास्त्र, मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण शास्त्र, सौन्दर्यशास्त्र की उपलब्धियों का उपयोग करना आवश्यक मानते हैं।''[6] आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद का मूल्यांकन करते हुए लिखा है— ''...किन्तु उसकी मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उसे हम बीसवीं शताब्दी की मानवीय प्रगति की प्रतिक्रिया भी कह सकते हैं। ...छायावादी काव्य प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सामयिक जीवन-परिस्थितियों से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। ...छायावाद मानव- जीवन- सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है।''[7]

डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह कहा है। इस दृष्टिकोण के आधार पर भी छायावाद का विचार विश्लेषण किया गया। छायावाद की समीक्षा करते हुए उसके उपादानों को कभी- कभी पिछड़े मतवादों से भी जोड़ने की चेष्टा की गयी। एक ओर उस पर हमले किये गये, तो दूसरी ओर उसके तेजस्वी उपादानों को आध्यात्मवाद- रहस्यवाद से जोड़ने की कवायद की गयी। छायावाद पर व्यंग्यात्मक शैली में निबंध लिखे गये थे। इस बारे में यह कहना उचित होगा कि 1921 ई. के जून महीने में सुशील कुमार ने 'सरस्वती' पत्रिका में उसी शीर्षक से लेख लिखा, जिस शीर्षक से मुकुटधर पांडेय ने सन 1920 में छायावाद पर एक मुकम्मल आलेख प्रस्तुत किया था। याद रखने की जरूरत है कि 1920 ई. में मुकुटधर पांडेय ने 'श्रीशारदा' पत्रिका में 'हिन्दी में छायावाद' नामक महत्त्वपूर्ण प्रबंध लिखा। उसी समय से हिन्दी कविता की इस धारा का नाम छायावाद पड़ गया था।

शायद हिन्दी साहित्य के महान आलोचक महावीर प्रसाद द्विवेदी को यह छायावाद नाम पसंद नहीं था। सन् 1921 ई. के जून महीने में व्यंग्यात्मक निबंध प्रकाशित करने के बावजूद 'सरस्वती' पत्रिका के महान सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं 'सुकवि किंकर' के उपनाम से छायावाद के सामने चुनौती पेश की, जिसे बाद के आलोचकों ने एक प्रहार के रूप में स्वीकार किया है, लेकिन उसे प्रहार नहीं बल्कि एक परीक्षा के रूप में स्वीकार करना चाहिए, तभी जाकर यह समझ में आ सकता है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी क्या कहना चाह रहे थे? उन्होंने छायावाद के सम्बन्ध में लिखा कि छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब हो कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए। छायावाद पर इस तरह सवाल उठाते हुए उन्होंने परोक्ष रूप से यह भी कहा कि बने- बनाये सूत्रों के आधार पर कविता का विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। अक्सर उस समय तक सूत्र के आधार पर ही साहित्य सिद्धांत रचे जाते थे।

Scanned with CamScanner

साहित्य सिद्धांतों को बदलने की ताकत समाज में है, इस सच को तत्कालीन आलोचना के लिए ग्रहण करना कठिन था। सामाजिक- राजनीतिक परिस्थितियों पर आर्थिक परिस्थिति किस तरह हावी होती है, इसका जिक्र उस रूप में नहीं किया जाता है। जैसे छायावाद का मूल्यांकन करते हुए शंभूनाथ सिंह ने लिखा है— ''यह तो भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित, भारतीय परिस्थितियों से अनुप्रेरित और प्रथम महायुद्ध के बाद के नवीन मानवतावादी आदर्शवाद पर आधारित हिन्दी की मौलिक काव्यधारा है। यूरोपीय रोमांटिक कविता का विद्रोह केवल सामंतवाद और उसका समर्थन करनेवाली रूढ़ियों और रूढ़ियों के विरुद्ध था, किन्तु छायावाद का विद्रोह सामंतवाद के साथ विदेशी साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी था। यूरोप में रोमांटिक कविता के समय तक पूंजीवाद का जितना विकास हो चुका था, उतना भारतीय पूंजीवाद का द्वितीय महायुद्ध के बाद तक भी नहीं हुआ था। यूरोपीय पूंजीवाद उपनिवेशों पर आधारित था और भारतीय पूंजीवाद स्वयं साम्राज्यवाद के बंधनों में जकड़ा था। इस कारण भारतीय व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना में यूरोपीय व्यक्ति स्वातंत्र्य जैसी शक्ति, वेग और तीव्रता नहीं थी।''[४]

इस तरह देखते हैं कि छायावादी काव्यों के समक्ष कई चुनौतियां थीं। उन सभी चुनौतियों को लेकर छायावाद का उत्थान हुआ। यह काव्यांदोलन प्रायः दो दशक तक जारी रहा। प्रथम चरण में सन् १९१८ से सन् १९२५ ई. तक छायावाद का विकास जोरशोर से हुआ। दूसरे चरण में उसका विकास धीमी गति से हुआ। यह काल १९२५ ई. से १९४२ ई. तक माना गया। प्रथम चरण की अपेक्षा इस चरण में उसका प्रसार भी धीमी गति से हुआ। यह कहना जरूरी है कि बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो चरणों में जिस तरह नवजागरण का विकास हुआ, उसका रूपांतर इस छायावाद में दिखता है।

छायावाद के सम्बन्ध में सैकड़ों मत और अवधारणाएं हैं। इन अवधारणाओं के सम्बन्ध में जयशंकर प्रसाद के विचार को देखना चाहिए, क्योंकि उन्होंने छायावाद का प्रवर्तन किया। उन्होंने छायावाद पर अपना विचार व्यक्त करते हुए 'काव्यकला और निबंध' पुस्तक में लिखा है— ''जब वेदना के आधार पर सहानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे छायावाद नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परम्परा से, जिसने बाह्य वर्णन की प्रधानता की, इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों को नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। ...उनके लिए नवीन शैली, नया पदविन्यास आवश्यक था। हिन्दी में नवीन शब्दों की भंगिमा स्पृहणीय आभ्यान्तर वर्णन के लिए प्रयुक्त होने लगी। शब्द विन्यास में ऐसा पानी चढ़ा कि उसमें एक तड़प उत्पन्न करके सूक्ष्म अभिव्यक्ति का प्रयास किया गया।''[५]

जयशंकर प्रसाद ने छाया के सम्बन्ध में अपना मंतव्य पेश किया, जो सराहनीय है। उन्होंने स्पष्ट लिखा कि अपने भीतर से मोती के पानी की तरह अंतरस्पर्श करके भाव समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया कांतिमयी होती है। आज इसी कांतिमयी को नये संदर्भ में देखने की आवश्यकता है। आज का युग वैश्वीकरण का है। एक तूफान है, चारों तरफ सारी चीजें हिल रही हैं। इसके बावजूद आज भी कविता साम्राज्यवाद से संघर्ष कर रही है, तभी तो मानवीयता की रक्षा करने का सवाल उठता है। यह सवाल किस वक्त में उठने लगा है, इस बारे में 'प्रतिश्रुति' के अंक ४२ में कवि- आलोचक रमाकांत शर्मा ने लिखा है— ''इसलिए वक्त आ गया है कि कवियों को अपनी प्राथमिकताएं तय करनी होंगी। फूल, पत्तियों, चिड़ियां की कविताएं भी हों, लेकिन रावण की तरह सामने आ खड़े साम्राज्यवादी सांस्कृतिक हमले की चुनौती से टकराना और भी ज्यादा जरूरी है। सही है कि इन जटिल स्थितियों से उत्पन्न संवेदनाओं को अपने माध्यम की शर्तों में बुनना आसान काम नहीं है, लेकिन यही रचनाकारों के समक्ष चुनौती है। इस चुनौती भरे पथ से जो बचेगा, वह कैसे रचेगा। कविता का भविष्य इन वास्तविकताओं से बचने में नहीं, टकराने में है।''[६]

आज की स्थिति बिल्कुल बदल गयी है। ऐसा महसूस होता है कि किसी ने समाज को अपने ढंग से ग्रस लिया है। रोशनी कहीं से नहीं आ रही है। रफ्तार

Scanned with CamScanner

से भागती रेलगाड़ी की खिड़कियों से जो रोशनी आती है, आज उसे ही रोशनी मान लिया जाता है। पर देखते- देखते ऐसा लगता है कि रोशनी अंधेरे में बदल गयी है। छायावादी काव्यों में ऐसी ताकत है, जो रोशनी को अंधेरे में नहीं बदलने देती है। जब 'पेशोला की प्रतिध्वनि' कविता की यह पंक्ति याद आती है कि 'कौन है मेवाड़ में/ किसकी सांस चलती है/' तो यही लगता है कि आज भी प्रसाद पुकार रहे हैं, विचार-शून्य समय से टकराने का हौसला दे रहे हैं और कह रहे हैं— 'बीती विभावरी जाग री!/ अंबर पनघट में डुबो रही/ तारा घट ऊषा नागरी!'

अनुराग से ही ज्योति की किरण फूटती है। छायावादी काव्य अनुराग के काव्य है, जिनमें अजस्र रश्मियां फैलाने की शक्ति है। इसी शक्ति- सम्पन्नता ने संतुलन का हाथ थाम लिया है। इसलिए विगत एक सौ वर्ष के उथल- पुथल के संदर्भ में छायावाद का मूल्यांकन करते हुए आधुनिक समाज की विषमताओं को हर कोण से देखने के लिए छायावादी काव्य रसद जुटाते हैं। संघर्ष के मैदान में श्रम को पूरी तरह प्रमुखता देते हुए परिवर्तन के सच्चे स्वरूप को रेखांकित करना, उस परिवर्तन के अनुरूप नयी पीढ़ी को सुख- सुकून मुहैया कराने का उद्घोष करना, समता- विषमता की दूरी को पाटना ही छायावाद के मूल्यांकन का नया परिप्रेक्ष्य हो।

वैसे किसी एक मानदण्ड के आधार पर किसी काव्य का मूल्यांकन सही और सार्थक नहीं होता है। मूल्यांकन की भावभूमि को उन्मुक्त रखना तथा उसे पूरी तरह सुरक्षित रखना आलोचक की काबिलियत है, पर आज इसी पर संकट का मेघ लटक आया है। इस लटके हुए मेघ का जवाब विचार- विमर्श की दुनिया में मिलना असंभव है, क्योंकि जो जान ले रहा है, वही दवा भी बांट रहा है। वर्तमान समय का यही यथार्थ है। चाहें तो इसे नये परिप्रेक्ष्य की संज्ञा दे सकते हैं। इस यथार्थ से टकराते हुए छायावादी कविताओं को यथार्थ की जमीन पर प्रस्तुत करने की जद्दोजहद शुरू करना वक्त की मांग है। इसी को ध्यान में रखते हुए छायावाद के मूल्यांकन के लिए नयी जमीन तलाशनी होगी, जहां साहस के साथ संघर्ष की

बातें रखी जा सकें, जहां पूरी दुनिया आह्लादमयी भावना को यथार्थ का जामा पहना सके, जहां लाचारी- बेचारी को पूरी तरह संजीवनी की घूंट पिलायी जा सके, जहां हर पक्षी खुशी के साथ अपना पंख खुजला सके, यह तभी संभव है, जब छायावाद को वास्तविकता के आईने के सामने रखते हुए राष्ट्रीय- अन्तरराष्ट्रीय घटनाक्रमों से जोड़कर उसका विश्लेषण किया जाय, इसी विवेचन-विश्लेषण से छायावाद के मूल्यांकन का नया परिप्रेक्ष्य खुल सकता है, तभी मजाज के शब्दों में कहा जा सकता है—

लेके इक चंगेज के हाथों से खंजर तोड़ दूं/ ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूं/ कोई तोड़े या न तोड़े, मैं ही बढ़कर तोड़ दूं/ ऐ गमे- दिल क्या करूं, ऐ वहशते- दिल क्या करूं।

Scanned with CamScanner

संदर्भ सूची

1. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2014, पृ. 614-615
2. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2014, पृ. 615
3. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2014, पृ. 620
4. शुक्ल, रामचन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2014, पृ. 658
5. सिंह, डॉ. नामवर, 'छायावाद', राजकमल, नयी दिल्ली, 1971 पृ. 152
6. अवस्थी, प्रो. पुष्पिता, 'आधुनिक काव्यालोचना के सौ वर्ष', राधाकृष्ण, नयी दिल्ली, 2006, पृ. 140-141
7. वाजपेयी, नन्ददुलारे, 'आधुनिक साहित्य', भारती भण्डार, इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण सं. 2022 वि., पृ. 319-20
8. वर्मा, धीरेन्द्र (सं. प्र.) 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग-1, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 325-326
9. प्रसाद, जयशंकर, 'काव्यकला तथा अन्य निबंध', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007, पृ. 143
10. शर्मा, डॉ. रमाकांत, 'प्रतिश्रुति'-42, 'साम्राज्यवाद से कविता का संघर्ष', भारतीय विद्या भवन, जोधपुर, पृ. 5

हिन्दी की संघर्ष-यात्रा

हिन्दी की यात्रा संघर्षात्मक रही है। वैसे तो हिन्दी को विभिन्न मुकामों से गुजरना पड़ा है। वास्तविकता पर ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि हिन्दी का वर्तमान रूप कलकत्ता में ही बना था। इस रूप की चर्चा जरूरी है। नेताजी ने हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उनके अनुसार; ''आजकल के हिन्दी गद्य का जन्म कलकत्ते में ही हुआ था। लल्लू लालजी ने अपना 'प्रेमसागर' इसी नगर में बैठकर बनाया और सदल मिश्र ने 'चन्द्रावली' की रचना यहीं पर की और यही दोनों सज्जन हिन्दी गद्य के आचार्य माने जाते हैं। हिन्दी का सबसे पहला प्रेस कलकत्ते में ही बना और सबसे पहला अखबार 'बिहार बन्धु' यहीं से निकला। इसलिए हिन्दी सम्पादन कला के इतिहास में कलकत्ते का स्थान बहुत ऊंचा है। सबसे पहले कलकत्ता विश्वविद्यालय ने ही हिन्दी को एम. ए. में स्थान दिया।'' राष्ट्रभाषा सम्मेलन की स्वागत समिति में नेताजी ने यह बात 20 दिसम्बर, 1928 को कही थी।

बंगाल ने सदा हिन्दी भाषा और साहित्य को विकसित करने में उत्साहवर्द्धन का काम किया है। बंगाल खुद को हिन्दी से अलग- थलग नहीं मानता है। पश्चिम बंगाल में हिन्दी भाषा और साहित्य को विकसित करने की परम्परा आजादी से पहले शुरू हुई थी जो परम्परा आज तक न केवल अक्षुण्ण है बल्कि वह और चौड़ी हुई है। उल्लेखनीय है कि हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में भारी मदद मिली। इसके जरिये पचासों हिन्दी की पुस्तकें प्रकाशित हुईं। उस समय देश में संयुक्त प्रांत था, जहां से इण्डियन प्रेस के मालिक चिंतामणि घोष ने इस पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया

Scanned with CamScanner